आखिर हिंदी ज़रूरी क्यों है ?

श्री चार्ल्स एक्का,
वरिष्ठ प्रशासन अधिकारी,
सी एम एफ आर आइ, कोचीन

अक्सर इस विषय को हम सोचने केलिए विवश हो जाते हैं कि अक्सर ऐसा क्यों हो रहा है कि हमारे कार्यालयीन कामों में ही बगैर हिंदी के मस्तिष्क को संचालित करने की मज़बूरी आ जाती है। जबकि अन्य अवस्था में हम बेझिझक और निर्भीक होकर हिंदी में वार्तालाप करने के लिए उत्सुक रहते हैं। कई ऐसे भी अवसर होते हैं जबकि, विशेषकर अंग्रेज़ी के शब्दकोश और व्याकरण का अल्पज्ञान और अज्ञानता को प्रकट करने के भय की स्थिति में , हम तुरन्त ही मस्तिष्क की क्रिया - प्रणाली को हिंदी के ही "कि बोर्ड" के ज़रिये नियंत्रित करने लगते हैं। कई ऐसे उदाहरण हैं जैसे कोई असमंजस की स्थिति में होता है कि सामने बैठा व्यक्ति हो सकता है उत्तर भारतीय, पूर्व-भारतीय, दक्षिण-भारतीय, पश्चिम-भारतीय या मध्य-भारतीय है, वह उसे हिंदी में टोकता है। यदि दूसरा अपरिचित व्यक्ति अपना नापसंदगी, अरुचि, नाराजगी, या असमर्थता दिखाता हो तो पहला व्यक्ति अपने वार्तालाप का अतिरिक्त चैनल अंग्रेज़ी में पेश कर देता है । जब कोई वैसे भी एकांत में हो या निश्चिंत अवस्था में हो तो उसके होंठों में तो हिंदी के गीत अवश्य ही थिरकते हैं चाहे वह किसी भी प्रांत, धर्म या जाति का हो। सर्वमान्य स्वरूप में गीतों के लिए तो हिंदी के सिवा कोई लोकप्रिय विकल्प रहा ही नहीं इस विशाल उपमहा द्वीप में। भाषा का ज्ञान हो या न मान हो हिंदी बातचीत आये या न आये, हिंदी सिनेमा गीत के दो बोल तो हरेक भारतीय नागरिक गुनगुना लेता है। काश , ऐसा ही आनंद और उमंग दफ्तरों में भी हिंदी माध्यम से काम करने से प्राप्त होता, जो हिंदी सिनेमा के गीतों को याददाश्त में सजोकर रखने में और एकांन्त की घड़ी में गुनगुनाने में प्राप्त होता है। और तो और इन गीतों को गाते समय हम किसी से कम नहीं की भावना के साथ प्रस्तुत करने में मजा जैसे आता है।

वैसे भी हमारे मस्तिष्क और मानसिकता का एक और पहलू ऐसा भी है कि हिंदी में न बोलना, न लिखना या न पढ़ना हमारे सामाजिक परिवेश में या हमारी सामाजिक भौतिक परिलब्धियों के मानदंड में स्वाभाविक तौर से एक अलग उपलब्धि है। जो कि हमें मानसिक तौर पर हीनता की भावना से भी हमें बचा लेती है। जैसे कि हम हिंदी न बोलने से स्वयं को अधिक सुसंस्कृत और अधिक सभ्य रूप में अपने व्यक्तित्व और संपन्नता को चमकदार बना लेते हैं। आखिर हमें अपनी वेश-भूषा और परिवेश को भी तो देखना पड़ता है जो कि पूर्णतया आधुनिक

और पाश्चात्य है। पूरी की पूरी व्यवस्था का स्वरूप ही आधुनिक और पाश्चात्य है। यही बात विश्वीकरण (ग्लोबलाइसेशन) की, यह तो पूरी तरह से ही हिंदी को परित्याग करने के लिए बाध्य कर रहा है।

आखिर, अमेरिका के राष्ट्रपति बिल क्लिंटेन और धनाढ्य बिल गेट्स इसीलिए भारतवर्ष आये भी कि हम हिंदी के बजाय अंग्रेज़ी का इस्तेमाल अधिक संख्या में करते है। हिंदी वार्तालाप में भी अंग्रेज़ी की खिचड़ी और चटनी डालते हैं, और साथ ही सूचना तकनीकी व्यंजनों के अंग्रेज़ी में, परोसने में भी हमारा वर्चस्व है। भला ऐसी स्थिति में राजभाषा हिंदी का क्या हस्र होगा, यह तो आने वाला कल ही बतायेगा, क्योंकि आज की स्थिति में प्रशासनिक तंत्र और प्रशासन में इस अंग्रेज़ी और इस पर आसन्न सूचना तकनीकी को कैसे हिंदी के द्वारा प्रतिस्थापित किया जाए, यह भी तो एक अनदेखी मुसीबत है। मगर यह तो कदापि गंभीर समस्या हो ही नहीं सकती है क्योंकि हम किसी भी विषय में विशेषकर राजभाषा के विषय में गंभीरता के साथ सोचने केलिए आदी नहीं हैं। जैसे भारतीय वेशभूषा और वस्त्र-धारण की शैली बदलती जा रही है, राजभाषा हिंदी की अपना ही आचरण और शैलियों को अवश्य ही बदलना पड़ेगा। आने वाला समय शायद यह सावित कर देगा कि भविष्य में वैज्ञानिक परिवर्तनों ,सूचना तकनीकी और मनोरंजन के साधनों में भी हिंदी का ही एकाधिकार आयेगा क्योंकि अंग्रेज़ी और इससे जुडी सूचना तकनीकी में भी हिंदी सिनेमा गीतों के जैसे आनंद रस की आवश्यकता होगी। रसहीनता और बेसुरेपन को प्रदर्शित करने वाले दूरदर्शन के कई कई कार्यक्रमों को देखकर हम अंदाजा लगा सकते हैं कि ये कार्यक्रम अधिकतर अन्य अभारतीय भाषाओं से अनूदित या प्रेरित होते हैं। और इनमें भारतीयता का तो नाम मात्र का भी अंश नहीं होता है। जब इन कार्यक्रमों में हमारे समाज और संस्कृति का चित्रण होगा अवश्य ही हिंदी की आवश्यकता होगी क्योंकि यही इस भारतीय समाज और इसकी संस्कृति की मुखरित आवाज है। हिंदी भाषा ही इस समाज के जीवन और इसकी सांस्कृतिक स्पन्दन का प्रस्फुटन और लक्षण है। निश्चय ही भारतीय सिनेमा की तरह मनोरंजन, विज्ञान और सूचना तकनीकी के माध्यमों में भी इस हिंदी भाषा की आवश्यकता होगी क्योंकि इस विशाल जनभूमि की अनकही ज़रूरत विविधता में एकता है। फिर क्षेत्रीय संकीर्णताओं का समाधान एकमात्र भाषागत विहंगम दृष्टिकोण है। साथ ही एकता की सूत्र में पिरोने वाली भाषा जनमानस के लिए हिंदुस्तानी या हिंदी ही हो सकती है।

फिलहाल हमें देखना है कि अखिर अपनी इस कार्यान्वयन की मोर्चे में जब हम प्रतिवर्ष हिंदी राज भाषा के लिए प्रतिबद्धता दिखाते हैं, कौन कौन सी और कितनी संभावित बाधाएं हैं ? क्या ये सभी बाधाएं भौतिक कठिनाईयाँ हैं या मानसिकता से संबंन्धित हैं। किन्तु यह सच है कि ये बाधाएं सामाजिक या सांस्कृतिक नहीं हैं जो कि हिंदी को सीखने और अपनाने में विशेषकर राजकीय क्रिया-कलापों में आड़े आती हों:-

हमारी मानसिकता ऐसी रही है, जैसे हम

सोचते हैं कि भारतीय राजभाषा को कार्यान्वित करना हमारा काम नहीं है, यह तो हमारी व्यवस्था का दयित्व है. सिर्फ एक प्रधानमंत्री की ही आवश्यकता है कि वह अपने विदेश भ्रमण में अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर इसका झंडा फहराते रहें और हम इस विषय की आलोचना करें क्योंकि आलोचना करना हमारा जनतांत्रिक मौलिक अधिकार है क्योंकि अन्तर्देशीय मामलों में राष्ट्रीय भाषाओं की संख्या बढ़ाकर उनकी समृद्धि और प्रसार को कुपोषित कर इन्हें सिर्फ राजनीतिक औज़ार और अवसरवादिता का साधन बनाया गया है और हमने राट्रीय एकात्मकता को क्षति पहुँचायी है । राष्ट्रीय स्तर पर इन प्रादेशिक भाषाओं के वीच में हिंदी ही परस्पर सम्पर्क भाषा के रूप में इन भाषाओं एवं सन्निहित ज्ञान भंडार के आदान प्रदान में कड़ी का रोल अदा कर सकता है। इस कटु सत्य का हमेशा ही नजर अंदाज किया गया है कि हिंदी के माध्यम से विभिन्न भाषा भाषी जैसे तमिल, मलयालम, तेलुगू, पंजाबी, बंगाली, मराठी उड़िया, गुजराती, असमिया इत्यादि भाषाओं को सीख सकते हैं, जो कि निहायत निष्ठ ज़रूरी है। अंग्रेज़ी जैसी भाष के माध्यम से इन क्षेत्रीय भावनाओं को सीखना इतना सरल नहीं जितना यह हिंदी के माध्यम से सहज हो सकता हैं।

क्षेत्रीयता और अलगाववाद का बढना अपने आप में इस तथ्य का सूचक रहा है कि इस देश में समग्रता की दृष्टि से राष्ट्रभाषा रूपी आत्मा का समस्त राष्ट्र रूपी भौतिक संरचना में कुठाराघात किया गया है।

संबंधित विभागों एवं संस्थाओं में कार्यरत व्यक्तियों का दृष्टिकोण भी अक्सर पूर्वाग्रह पूर्ण एवं संकीर्ण रहा है। अक्सर यही देखा आता है कि संबंधित व्यक्ति निर्धारित दिशा निर्देश एवं कार्यक्रमों के अनुपालन की रोजमरे में लिप्त रहे हैं। अभी तक रोचकता और अभिरुचि अन्तरमन में ही, कुंठित होता सा दिखाई पड़ती है इसलिए क्रियान्वयन के परिणाम भी निराशाजनक और अरुचिकर दिखाए पड़ते हैं।

कई तरह से राजभाषा हिंदी की अन्य प्रादेशिक भाषाओं की तुलना में उसकी सहजता और रोचकता को अनदेखा किया गया है विशेषकर इसकी अन्तर्निहित व्याकरणनिष्ठता, क्लिष्टता एवं संस्कृत - निष्टता, इसकी समकालीनता और प्रादेशिकता के आधार पर प्रचलित लोक बोलियों के शब्दों एवं भावों को नजरअंदाज़ करके इसे पुरातनता की ओर पीछे ले चलना भी इसके स्वरूप में जटिलता एवं निरसता जाने केलिए जिम्मेदार है। जबकि वर्तमान समय में अभारतीय भाषाओं के शब्दों के अवांछनीय प्रयोग से इसके स्वरूप एवं रचना को गहरा नुक्सान पहुँचा है।

सर्वसाधारण जनमानस के लिए चेतना एवं भाषा संकल्प के स्थान पर कर्मकांडी आडम्बर का स्थान दिया जाना भी इसके विकास में किये गये प्रयासों पर प्रश्नचिन्ह डाल देता है। क्योंकि यह सर्व विदित है कि हिंदी का स्थान राष्ट्रीय स्तर पर कोई अन्य भाषा नहीं ले सकती है। फिर भी इसें विशुद्धीकरण एवं प्रसंस्करण की प्रक्रिया में अत्यन्त

अस्वाभाविक एवं अरुचिकर बनाया गया है, जिससे अहिंदी भाषी क्षेत्रों में इसकी लोकप्रियता को बढाने और स्वीकारयोग्य बनाने में अत्यधिक विलम्ब हुआ है। यह आम बोलचाल की भाषा नहीं रही बल्कि राजकीय भाषा का दर्जा पाकर जन साधारण के मानसपटल में श्रेष्ठता का बोध एवं भार लाद रही है जिसके कारण हिंदी साहित्यिक रचनाओं, नाटकों एवं कविता के पठन-पाठन के लिए समय की कमी जैसे टालमटोल एवं उपेक्षा ही मिलते रहे है। मुंशी प्रेमचंद जैसे महान रचनाकारों की तुलना में इनीगिनी रचनाओं को छोड़कर जन-साधाराण केलिए रुचि और आकर्षण वर्तमान लेखकों की रचनाएं संचित नहीं कर पायी हैं। साहित्य का स्थान भी गौण होता जा रहा है, क्योंकि भैतिकता और उपभोक्तावाद के प्रभाव से भाषा एवं साहित्य भी प्रभावित हुए हैं। आखिर भाषा - साहित्य समाज और सामाजिक जीवन का ही दर्पण है। लेकिन बापूजी की हिन्दुस्तानी भाषा का कोई विकल्प सर्वसाधारण केलिए नहीं हो सकता है।

राजभाषा हिंदी के अधिकाधिक प्रयोग के लिए अवश्य ही बुनियादी तौर पर शैक्षणिक संस्थान जिम्मेदार हैं । हरेक पीढ़ी की मानसिक अभिव्यक्ति और इस अभिव्यक्ति का प्रस्तुतीकरण एक प्रतिष्ठित भाषा के माध्यम से ही संभव हो सकता है। इसलिए राजभाषा को जन- जन के मन की अभिव्यक्ति की भाषा का सर्वोच्च स्थान तो मिलना ही चाहिए, साथ ही इसे साहित्यिक रचनाओं एवं अभिव्यक्ति की गतिविधियों का माध्यम भी बनना चाहिए । प्रारंभिक शिक्षा काल में ही सुदृढ़ भाषाज्ञान, भाषा रचना, साहित्यिक रुचि जैसे नाटक-कारिता, नाटक - मंचन, कविता-पाठ, लेखन-प्रलेखन , कथा-लेखन, निबंधन इत्यादि को महत्व देना चाहिए, ताकि क्रियान्वयन की अवस्था में सहजता, स्वाभाविक रुचि एवं योगदान हर क्षेत्र में मिलेगा।

इसलिए यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि जिस प्रकार अंग्रेज़ी माध्यम के शिक्षण संस्थाओं में अंग्रेज़ी भाषा और साहित्य को उसके व्यावसायिक प्रासंगिकता के आधार पर जो महत्व मिलता रहा है, वही महत्व हिंदी राजभाषा को राष्ट्रप्रेम, राष्ट्रीय एकात्मता एवं भावी राष्ट्रसंरचना का आधार बनाया जा सकता है। राजकीय क्रिया कलापों में हिंदी को तभी समुचित स्थान मिलेगा जब हिंदी के माध्यम से संभाषण, संगोष्ठी, कार्यशाला वगैरह आयोजित किये जाए या अनिवार्यतः हिंदी में मूल रचनाओं का प्रस्तुतीकरण हो क्योंकि हिंदी भाषा में शब्द समावेश एवं अन्य भाषाओं को अंगीकृत करने की क्षमता असीमित है। प्रचलित क्षेत्रीय भाषा में मौजूद तकनीकी शब्दावलियों को बखूबी से सहजरूप में समेट भी सकता है। अतः तकनीकी भाषाओं के लिए उपयुक्त शब्दों की कमी से हिंदी के कार्यान्वयन में कभी अड़चन नहीं होगा। बुनियादी स्तर पर हिंदी की रोचकता और अभिरुचि के साथ बाल मनोरंजन का माध्यम बनाकर उनके बालमानस को उर्वर और प्रखर बनाना निहायत आवश्यक है। मौलिकता और सुदृढ़ भाषा संस्कृति का आधार बाल्यावस्था ही है। अपने बच्चों को राजभाषा और साहित्य सिखाने वाले माता-पिता या अभिभावक निसंदेह स्वयं भी अपनी निजी व्यवसाय में अथवा

कार्य स्थल में बिना संकोच हिंदी के मध्यम में काम करेंगे। उन्हें किसी प्रकार के पुरस्कार एवं प्रोत्साहन का भी ज़रूरत क्यों होगा। जब उनको स्वयं के कामों में हिंदी के जरिये असीम आत्म संतोष एवं परितोष प्राप्त होता है क्योंकि आखिर आत्म गौरव का स्थान प्रोत्साहित करने वाले पुरस्कारों की खुशी से कई गुना अधिक है।

मूल रूप में हरेक भाषा का मूल स्रोत एक समाज और इसकी संस्कृति है जो भाषाओं के विविध साहित्यों में प्रतिबिंबित होते हैं। साहित्य रचना और अन्य भाषाओं की साहित्यिक रचनाओं के अनुवाद भी हरेक भाषा के रचना संग्रह या ग्रंथ कोष को समृद्ध करता है । जिसके लिए कार्यस्थलों में उपयुक्त माहौल का निर्माण करना और साहित्यिक गतिविधियों को उचित स्थान देना पडेगा। स्वाभाविक तौर पर कार्यालय समय में इनका परिचालन करने से अधिकाधिक योगदान, सहयोग और प्रतिबद्धता इन कार्यक्रमों में सहभागिता के ज़रिऐ मिलेगा। यह निश्चय ही स्वस्थ मानसिक मनोरंजन का साधन बन सकता है। साथ ही आधुनिक संचार माध्यमों के ज़रिऐ फैलने वाले दूषित मानसिकता एवं कुंठा को रोक सकता है। साथ ही संचार माध्यमों की भी साहित्यिक रचनाओं के रूप में प्रचुर पोषण मिलेगा एवं बाज़ार में प्रचलित व्यावसायिक मनोरंजन को भी चुनौती मिलेगी। अवश्य ही ऐसी राजभाषा के ज़रिए इसकी लोकप्रियता के बल पर इसकी बहुआयामी गतिविधि के आधार सामाजिक वस्तुस्थिति का चित्रण समुचित रूप में होगा और समाजिक निर्माण जैसे पुनीत कामों में इसकी भूमिका बेजोड़ रहेगी। हिंदी की लोकप्रियता में वैसे भी कोई प्रश्न नहीं है। कठिनाई सिर्फ इसे साधारण क्रिया कलापों एवं आम बोलचाल में शिक्षित वर्ग द्वारा अपनाने में रही है।

आज इस बात को सभी जानते हैं कि इस देश में कई विदेशी कंपनी अपने मनोरंजन कार्यक्रमों एवं चलचित्रों को हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं में अनूदित कर अधिकाधिक व्यवसाय एवं मुनाफा कमा रहे है। इस स्थिति में भी अंग्रेज़ी के प्रति पूर्वाग्रह और हिंदी की अवहेलना, पथभ्रष्टता और दिशाहीनता का ही परिचय देता क्योंकि ऐसे कम्पनी और निर्माताओं का मक्सद ही अभारतीय भाषाओं को विकसित और प्रसारित करना कतई नहीं है। बल्कि वे अपना व्यवसाय यहाँ की नई तकनीकी की भूखी जनता को मायाजाल दिखाकर बढ़ रहे है। निस्संदेह ऐसे कार्यक्रमों को हिंदी में भी बनाया जा सकता है, शर्ते कि रचनाएं मौलिक और सामयिक हों। एसे कई विकसित देशों में वहां की राजभाषा में सारे क्रियाकलाप होते हैं जहाँ तकनीकी शब्दावली की कमी को हरगिज बाधा नहीं समझते हैं। इसलिए हमारे कार्य संस्कृति का स्वरूप क्यों न अत्यंत उत्कृष्ट हो अत्यधिक वैज्ञानिक और तकनीकी जन्य हो, राजभाषा के द्वारा हर क्रियाकलाप एवं इसके हर गतिविधियों का रूपान्तरण या अवतरण किया जा सकता है क्योंकि अन्तिम रूप में सूचना प्रसारण एवं इसके अभिज्ञान के लिए इसे सर्वसाधारण या जन-समुदाय तक तो पहुँचाना है। हम सभी आम जनता के प्रति उत्तरदायी हैं और उनकों इन गतिविधियों की जानकारी प्राप्त करने का अधिकार है।

सर्व साधारण की प्रतिनिधित्व देने वाले संगठनों में यह सवाल उठाया जा सकता है कि हमारे वैज्ञानिक गतिविधियों एवं उपलब्धियों, तकनीकी खोजों और उसके प्रसारण के लिए राजभाषा या अन्य भारतीय भाषाओं का प्रयोग किस हद तक हुआ है, या इन सभी जानकारियों को इन भाषाओं के माध्यम से सर्वसाधारण के पास किस मात्रा में पहुँचाया गया है?

संविधान में राजभाषा को महत्वपूर्ण स्थान देकर इसके प्रति सम्मान का दायित्व सभी नागरिकों को सौंपा गया है, हमारी वैज्ञानिक उपलब्धियाँ और तकनीकी ज्ञान के अपार भंडार को सर्वविदित करने में एक वर्ग विशिष्टता की भावना और सर्वसाधारण से दूर रहने की प्रवृत्ति पर अंकुश लगाना अत्यन्त आवश्यक है। सामाजिक प्रगति और असमानता को मिटाने केलिए भी राजभाषा सशक्त साधन साबित हो सकता है। अवसर की समानता जैसे प्रजातंत्रिक मूल सिद्धांतों को राजभाषा के माध्यम से ही प्रतिस्थापित किया जा सकता है क्योंकि व्यावहारिक तौर पर राजभाषा हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषाओं में शिक्षाप्राप्त और इसका प्रयोग करने वाले व्यक्तियों को प्रशासनिक तंत्र एवं अराजकीय या अराजाकीय संगठनों में अपेक्षाकृत कम महत्व मिला है। ऐसी विकृत मानसिकता और भारतीय भाषाओं की छवि को धूमिल करने वाले प्रयासों का परित्याग एवं बहिष्कार ही एक मात्रा विकल्प है जिसके परिणामस्वरूप हरेक प्रशासन तंत्र और संगठनों में संविधान के अनुसार अपेक्षित स्तर पर राजभाषा एवं अन्य भारतीय भाषाओं को व्यावहारिक एवं प्रयोजनात्मक स्थान मिल सके। ❑

"हिन्दी भाषा की प्रसार वृध्दि करना, उसका विकास करना ताकि यह भारत की सामाजिक संस्कृति के सब तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम हो सके तथा उसकी आत्मीयता में हस्तक्षेप किये बिना हिन्दुस्तानी और अष्टम अनुसूची में उल्लिखित अन्य भारतीय भाषाओं के रूप, शैली और पदावली को आत्मसात करते हुए तथा जहाँ तक आवश्यक या वांछनीय हो वहाँ उसके शब्द भंडार के लिए मुख्यतः संस्कृत से तथा गौणतःअन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए उसकी समृद्धि सुनिश्चित करना संघ का कर्तव्य होगा।"

अनुच्छेद 351, भाग XVII,
भारत का संविधान 1950